Sharadha sarg vyakhya part 5

लगे कहने मनु सहित विषाद:-

“मधुर मारुत से ये उच्छ्वास

अधिक उत्साह तरंग अबाध

उठाते मानस में सविलास।

किंतु जीवन कितना निरुपाय!

लिया है देख नहीं संदेह

निराशा है जिसका परिणाम

सफलता का वह कल्पित गेह।“

कहा आगंतुक ने सस्नेह:-

“अरे तुम इतने हुए अधीर!

हार बैठे जीवन का दाँव,

जीतते मर कर जिसको वीर।

तप नहीं केवल जीवन सत्य

करुण यह क्षणिक दीन अवसाद;

तरल आकांक्षा से है भरा

सो रहा आशा का आह्लाद।

प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल;

मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह उत्सुक है उनकी धूल।

पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक;

नित्य नूतनता का आनंद
किए हैं परिवर्तन में टेक।

युगों की चट्टानों पर सृष्टि
डाल पद-चिह्न चली गंभीर;

देव, गंधर्व, असुर की पंक्ति
अनुसरण करती उसे अधीर।

“एक तुम, यह विस्तृत भू-खंड
प्रकृति वैभव से भरा अमंद;

कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनंद।

अकेले तुम कैसे असहाय

यजन कर सकते? तुच्छ विचार!

तपस्वी! आकर्षण से हीन

कर सके नहीं आत्म विस्तार।

दब रहे हो अपने ही बोझ

खोजते भी न कहीं अवलंब;

तुम्हारा सहचर बन कर क्या न

उऋण होऊँ मैं बिना विलंब?

समर्पण लो सेवा का सार

सजल संसृति का यह पतवार,

आज से यह जीवन उत्सर्ग

इसी पद तल में विगत विकार।

उस आगंतुक रमणी अर्थात् श्रद्धा के उद्गारों को सुनकर मनु ने व्यथापूर्ण वाणी ने उनसे कहा कि जिस प्रकार वायु के मधुर झकोरे मानसरोवर में एक प्रकार की हलचल-सी उत्पन्न कर देते हैं उसी प्रकार तुम्हारी इन बातों को सुनकर मेरे हृदय में उत्साह एवं आनंद के अनेक भाव उठ रहे हैं परंतु इस भीषण जल प्रलय को देखकर मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मानव जीवन अत्यंत विवशतापूर्ण है और जीवन में सफलता की आशा करना व्यर्थ ही है कारण कि उसका अंत निराशा पूर्ण ही होता है। मनु का विचार है कि सफलता प्राप्त करना तो इन धरती में कल्पना मात्र ही है और जीवन की सफलता तो कल्पित घर के समान अपयार्य जान पड़ती है।

मनु की वाणी को सुनने के पश्चात् उस आगंतुक अर्थात् श्रद्धा ने अत्यंत स्नेह के साथ उनसे कहा कि अरे तुम तो यहाँ तक अधीर हो गए कि अपने जीवन की बाज़ी ही हार बैठे और जहाँ कि वीर पुरुष अपने प्राणों को भी उत्सर्ग कर जिस जीवन की बाज़ी को जीतने के लिए तैयार रहते हैं वहाँ उससे तुम यों ही

निराश हो गए हो। इस प्रकार श्रद्धा ने यहाँ यही कहना चाहा है कि इस विश्व में वही विजयी होता है जो बिना किसी भय के अपने प्राणओं की बाज़ी लगाने के तैयार रहता हो और जो पहले से ही हताश होकर पराजय स्वीकार कर लेता है वह कभी भी कर्मवीर नहीं कहला सकता। वस्तुत: सफलता प्राप्त करने के लिए दृढ़ता अपेक्षित है और जो पहले से ही पराजय स्वीकार कर लेता है, भला वह कभी भी प्रगति कैसे कर सकता है।

श्रद्धा मनु से कहती है कि एकमात्र तपस्या ही जीवन का सत्य नहीं है अर्थात् जगत से विरक्त हो जाना अनुचित ही है और मनुष्य को चाहिए कि इस संसार में लीन रहे। कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य वह है जो उस जगत की भव-बाधाओं से भयभीत न हो और हमेशा साहस के साथ प्रत्येक प्रकार की परिस्थितियों का सामन करता रहे। श्रद्धा का विचार है कि मनु में, जो दीनता से पूर्ण मानसिक शैथिल्य आ गया है, वह न आना चाहिए था और यदि किसी प्रकार की शिथिलता आ भी गई तो उसके वशीभूत होना अनुचित ही है क्योंकि यह तो क्षणिक भाव है। श्रद्धा मनु से कह रही है कि तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम्हारे हृदय में अनेक मधुमय आशाएँ छिपी हुई हैं और तुम्हारा हृदय अनेक मधुर आशाओं का संसार है अत: स्वयं शक्तिशाली होकर निराशा से घबड़ा उठना कदापि उचित न समझा जाएगा। श्रद्धा मनु से कहती है कि तुम्हारे हृदय में तरल आकाक्षाओं से पूर्ण आशा का आल्हाद सुप्तावस्था में है अत: उसे जाग्रत कर कर्मशील बनने की प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

श्रद्धा मनु से कह रही है कि यह प्रकृति भी अपना यौवन अर्थात् अपनी सुंदरता बनाए रखने के लिए उसी प्रकार हमेशा नवीन फूल धारण करती है जिस प्रकार कि युवतियाँ शृंगार कर रही हों अर्थात् प्रकृति रूपी युवती नवीन फूलों से शृंगार कर अपना यौवन अक्षुण्ण बनाए रखना चाहती है। वस्तुत: बासी या मुरझाए हुए फूल तो धूल में मिल जाने के लिए ही हैं और उनसे कभी भी शृंगार नहीं हो सकता अत: मनुष्य को भी चाहिए कि वह अपने हृदय में आलस्य और निराशा की भावनाएँ न उठने दे क्योंकि वे तो जीवन के अनुपयोगी तत्व ही हैं तथा उनके कारण मनुष्य कभी भी प्रगति नहीं कर सकता। इस प्रकार मुरझाए फूल जिस प्रकार धूल में मिलकर नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार मनुष्य को भी अपने हृदय में निराशा को स्थान न देना चाहिए।

श्रद्धा का कहना है कि प्रकृति कभी भी प्राचीनता के इस आवरण को क्षण भर के लिए भी सहन नहीं कर सकती और अनुपयोगी तत्वों को तो वह नष्ट ही कर देती है। वास्तव में परिवर्तन का अर्थ ही नवीनता है और उसका आगमन अनुपयोगी या असामयिक तत्वों को नष्ट करने के लिए होता है तथा इस विनाश के पश्चात् जिन नवीन तत्वों की उत्पत्ति होती है उन्हें ही परिवर्तन कहा जाता है। इस प्रकार परिवर्तन आनंद का ही सूचक है और बिना परिवर्तन आनंद प्राप्ति भी असंभव ही है।

वस्तुत: जिस प्रकार एक यात्री एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर अपने पैर रखते हुए आगे बढ़ता चला जाता है उसी प्रकार यह सृष्टि भी युगों की चट्टानों पर अपने पद चिन्हों की छाप छोड़ती हुई आगे बढ़

रही है और उसका विकास ही हो रहा है। कहने का अभिप्राय यह कि युग पर युग बीतते चले जाते हैं पर सृष्टि के विकास की गति अवरुद्ध नहीं होती अर्थात् विश्व की सभी वस्तुएँ नाशवान हैं तथा एक जाति के नष्ट होने के पश्चात् दूसरी जाति अवश्य उत्पन्न होती है और जब वह नष्ट हो जाती है तब दूसरी जाति पैदा होती है। इस प्रकार सृष्टि का विकास निरंतर होता रहता है और प्रकृति हमेशा विकासशील ही रही है। इश प्रकार यह जगत परिवर्तनशील ही है और हमें कभी भी दु:खों से घबड़ा कर विचलित न होना चाहिए।

श्रद्धा ने मनु से कहा कि एक ओर तो तुम हो जिसने जीवन से निराश होकर इस प्रकार मन मानकर बैठने का निश्चय किया है और दूसरी ओर यह विशाल पृथ्वी है जो कि विपुल प्राकृतिक ऐश्वर्य से पूर्ण है। यहाँ यह स्मरणीय है कि परंपरा से यह धारणा चली आ रही है कि मनुष्य पूर्व जन्म में जिस प्रकार के शुभ अथवा अशुभ क्रम करता है उसी प्रकार के परिणाम भी उसे दूसरे जन्म में सहन करने पड़ते हैं और फिर उस दूसरे जन्म में वह जैसे कर्म करता है वैसे ही परिणाम उसे अगले जन्म से भी सहने पड़ते हैं। इसी नियम के अनुसार चेतन प्राणी जड़ प्रकृति का आनंद ले पाता है और यही कारण है कि इस संसार में कहीं तो प्राणी कर्मों का आनंद ले पाते हैं और कहीं वे कर्म किए जा रहे हैं परंतु इतने पर भी उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त नहीं होती लेकिन वे कर्म से पीछे नहीं हटते।

श्रद्धा मनु से कहती है कि तुमने जो एकाकी जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया है वह अत्यंत तुच्छ विचार है और वह न केवल सृष्टि के नियमों के प्रतिकूल है अपितु मान्यता के अनुकूल नहीं है। वास्तव में कोई भी प्राणी अकेले कोई भी कार्य नहीं कर सकता अत: मनु भी एकाकी रहकर बिना किसी दूसरे की सहायता लिए जीवन यज्ञ करने में असमर्थ ही रहेंगे और उनका आकर्षणहीन एकाकी जीवन आत्म-विस्तार की संभावनाएँ भी दूर कर देगा अर्थात् वे अपनी आत्मा का विकास भी न कर पाएँगे।

श्रद्धा ने मनु से कहा कि ओर तो तुम्हें स्वयं ही अपने दु:ख का बोझ उठाना पड़ रहा है और दूसरी ओर तुम किसी का सहारा भी नहीं ले रहे हो अत: तुम्हारी इस दशा को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि तुम्हारे कार्यों में हाथ बँटाने वाला कोई साथी तुम्हारे पास अवश्य हो जिससे तुम्हें अपना जीवन भार स्वरूप न जान पड़े। श्रद्धा पुन: मनु से कहती है कि सब बातों को सोचने विचारने के पश्चात् मैंने यह निश्चय किया है कि बिना किसी विलंब के तुम्हें अपना सहयोग प्रदान कर अपने कर्तव्य का पालन करूँ। उसका कहना है कि मुझे तुम्हारा साथी बनकर अपने आपकी उऋण ही कर लेना चाहिए क्योंकि वही मेरा धर्म है।

श्रद्धा मनु को संबोधित कर कहती है कि मैंने यह निश्चय कर लिया है कि बिना किसी विलंब के तुम्हें अपना सहयोग प्रदान कर अपने कर्तव्य का पालन करूँ अत: मैं अब तुम्हारी सेवा में लगी रहूँगी। श्रद्धा का कहना है कि आत्म-समर्पण ही समस्त सेवाओं का सार है अर्थात् सबसे बड़ी सेवा है इसलिए मैं आज बिल्कुल निस्वार्थ भावना से तुम्हारे चरणों में अपना जीवन अर्पित कर रही हूँ और मेरा यह आत्म-समर्पण दु:खपूर्ण जगती में पड़ी हुई तुम्हारी जीवन नौका को पार लगाने के लिए पतवार के समान सिद्ध होगा।